Research Papers

ISSN 2320-4443

परामर्श

(हिन्दी)

खण्ड ३१ अंक १-४
दिसंबर २०१० - नवंबर २०११
भारतीय सौर मार्गशीर्ष - कार्तिक शके १९३२-३३
प्रकाशन वर्ष - नवंबर, २०१७

दर्शनशास्त्र विभाग
सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय प्रकाशन

अनुग्रह का स्वरूप

डॉ. अखिलेश्वर प्रसाद दुबे

भारतीय चिन्तन/दर्शन की विशेषता कर्मफल सिद्धान्त है। जब हमें ईश्वर से स्वयं के अपृथकत्व का ज्ञान हो जाता है, तब जीवन के हर क्षण में जो भी कर्मों का फल प्राप्त होता है, वह अनुग्रह है। सर्वव्यापक ईश्वर अपने भक्त की उपासना से प्रसन्न होकर भक्त के हृदय में निवास करता है। शंकर के अनुसार निराकार होने पर भी वह अपने उपासकों पर अनुग्रह करने के लिए भाँति-भाँति के आकार धारण करता है। गीता की यह मान्यता है कि भक्त सारे कार्य ईश्वर को अर्पित करता है, उसकी शरण में जाता है[1] और उसके प्रसाद (अनुग्रह) रूप में परम पद को प्राप्त करता है। प्रपत्ति (पूर्ण समर्पण) और शरणागति भक्ति के आवश्यक अंग हैं और अनुग्रह (Grace) भक्ति का आधारभूत सिद्धान्त है।

साधारणतः 'अनुग्रह' का अर्थ कृपा होता है जिसका सीधा सम्बन्ध ईश्वर कृपा है। ईश्वर (अद्वैत) ही जीवों का पोषक और जीवन की हर उस घटना का जिसका हम कर्मफल रूप में सामना करते हैं, और कुछ नहीं उनका अनुग्रह ही है। वही अनुग्रहपूर्वक हमें अच्छे कर्मों के परिणामस्वरूप बंधन मुक्त कर मोक्ष प्रदान करता है।

'अनुग्रह' शब्द कृपा पर्याय न होकर उपकार का समानार्थक है जिसका कर्ता कारक न होकर उपकारक या अनुग्राहक कहा जाता है। जैसे - घट के देखने में चक्षुरिन्द्रिय को न्याय में करण कारक माना गया है किन्तु प्रकाश करणरूप असाधारण एवं सव्यापार कारण न होकर अनुग्राहक रूप साधाण कारण या उपकारक है। प्रकाश के होने पर ही चक्षुरिन्द्रिय की सक्रियता बनती है, अतः वह उसका अनुग्रह करता है। कुमारिल ने इसी दृष्टि से कहा है –

अनुग्रहाच्च धर्मत्वम्। (श्लोक, चोदना २४३)[2]

अनुग्रह के कारण यज्ञादि को धर्म कहा जाता है। सहकारी धर्म से स्वर्गादि की प्राप्ति होती है जिसमें कर्ता पुरुष है। धर्म केवल अनुग्राहक है। इसी दृष्टि से शालिकनाथ मिश्र ने कहा है –

मूल्य : 20 रुपये
ISSN 0973-1490
वर्ष-14 अंक-4
अप्रैल-जून 2017

चिन्तन-सृजन

www.asthabharati.org

त्रैमासिक

आस्था भारती, दिल्ली

बौद्ध दर्शन - प्रस्थानों के सैद्धान्तिक मतभेद और एकवाक्यता के मूलभूत सूत्र

अम्बिकादत्त शर्मा*

भगवान् बुद्ध द्वारा प्रवर्तित बौद्ध दर्शन कोई एक दर्शन नहीं, अपितु दर्शनों का समूह है। इनका मूल धर्मग्रन्थों की सुव्यवस्थित संहिता में न होकर मौखिक रूप से प्रसारित उपदेशों की आकार विहीन परम्परा है। बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद भिक्षु संघों द्वारा विभिन्न संगीतियों का आयोजन कर बुद्ध वचनों को सुत्त, विनय और अभिधम्म पिटक के रूप में संहिताबद्ध किया गया। यही त्रिपिटक बौद्ध दर्शनों के संहिताबद्ध आधार हैं। बुद्ध वचनों को तीन ही पिटकों में विभाजित करने का आधार बुद्ध की तीन शिक्षायें (शील, समाधि और प्रज्ञा) और तीन प्रकार की देशनाएँ (आज्ञा, व्यवहार और परमार्थ) हैं।[1] अन्य धार्मिक परम्पराओं की तरह पिटकों में संग्रहित ज्ञान-राशि को अपौरुषेय अथवा दैवीय रूप से प्रकाशित नहीं माना जाता है। यह चेतावनी स्वयं बुद्ध द्वारा ही दी गई है कि उनके उपदेश पौरुषेय प्रमाण की सीमा में हैं और उन्हें श्रद्धाभाव के चलते नहीं, बल्कि परीक्षा की कसौटियों पर कसकर ही स्वीकार किया जाना चाहिए।[2]

विवेक का स्वातन्त्र्य चूँकि बौद्धानुयायियों को विरासत में मिली है, इसलिए कालान्तर में बौद्ध दर्शन का विकास बुद्ध वचनों के वास्तविक तात्पर्य को उद्घाटित करने के प्रयास में हुआ है। मोटे तौर पर बुद्ध वचनों के तात्पर्य का निर्धारण उन्हें नीतार्थ और नेयार्थ मानकर किया जाता है। नीतार्थ वचन वे हैं जिनका अर्थ सीधे-सीधे शब्दशः ग्रहण किया जाता है जबकि नेयार्थ वचन अभिप्रायिक होते हैं।[3] व्याख्या के इस मूलभूत सूत्र के पीछे यह धारणा प्रचलित रही कि बुद्ध के उपदेश एकस्तरीय नहीं बल्कि पात्रों की बौद्धिक क्षमता को ध्यान में रखकर दिए गए हैं।[4] इसी आधार पर यह भी माना जाता है कि बुद्ध ने कम-से-कम तीन धर्मचक्र प्रवर्तनों के द्वारा अपने उपदेशों के आशय को अधिकारीभेद के साथ प्रकट किया है। इसमें प्रथम धर्मचक्र

* दर्शन विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, म.प्र.

अक्षरा

मई–जून 2017

150

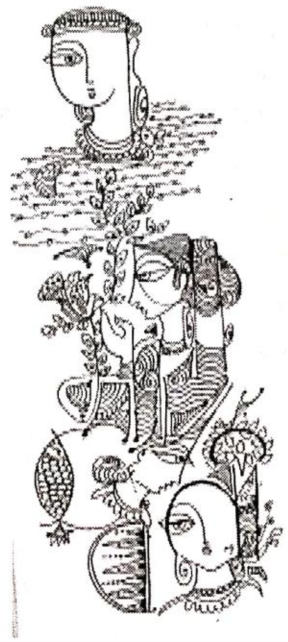

कैलाशचन्द्र पन्त
प्रधान सम्पादक

सुशील कुमार केड़िया
प्रबंध संपादक

डॉ. सुनीता खत्री
सम्पादक

वार्षिक सदस्यता शुल्क : 150 रुपए (साधारण डाक) 225 रुपए (कोरियर से)
पंचवर्षीय सदस्यता शुल्क : 1000 रुपए (साधारण डाक) 1500 रुपए (कोरियर से)
आजीवन सदस्यता शुल्क : 2000 रुपए (साधारण डाक) 3000 रुपए (कोरियर से)
एक प्रति २० रुपये
विदेशों के लिए : एक अंक : 6 डॉलर, वार्षिक : 35 डॉलर

चेक या ड्राफ्ट 'म.प्र. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति– 'अक्षरा'' के नाम देय

सम्पर्क : म.प्र. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, हिन्दी भवन, श्यामला हिल्स, भोपाल – 462002 (म.प्र.)
दूरभाष : 0755– 2660909, 2661087, ई–मेल – hindibhawan.2009@rediffmail.com
वेबसाइट – www.madhyapradeshrashtrabhasha.com

भारत का सांस्कृतिक-साभ्यतिक विश्वबोध

-अम्बिकादत्त शर्मा

स्वतंत्रता पूर्व और स्वतंत्रता के पश्चात्वर्ती बहुत से विचारक जिन्होंने भारत के सांस्कृतिक-साभ्यतिक विश्वबोध को उसकी आत्मा में प्रतिष्ठ हो कर आत्मसात् किया है (स्वामी विवेकानन्द, श्री अरविन्द, महात्मा गाँधी, के.सी. भट्टाचार्य, अज्ञेय, निर्मल वर्मा, जडावलाल मेहता, यशदेव शल्य और रमेशचन्द्र शाह) उनकी दृष्टि में भारत की वास्तविक समस्या यह है कि हम 1947 ई. में राजनीतिक रूप से स्वाधीन होकर औपनिवेशिक प्राधिकरण से कदाचित् मुक्त तो हो गये लेकिन यूरोपीयकरण के अंगभूत बने ही हुए हैं। यूरोपीयकरण मानो हमारी समझ में अभ्यान्तरित हो गया है। आज भारत किसी साम्राज्यवादी सत्ता का उपनिवेश नहीं है, फिर भी वह अपनी संस्कृतात्मा पर यूरोपीय सभ्यता के उस शरीर को प्रत्यारोपित किये हुए है जिसकी आत्मा कबके उसे छोड़कर चली गई है। इस समस्या को सही तौर पर समझने के लिए औपनिवेशीकरण और यूरोपीयकरण के अर्थ और निष्पत्तियों को अलग-अलग करके समझना जरूरी है। विशेषकर भारत के सन्दर्भ में तो यह बेहद आवश्यक कार्ययोजना है। औपनिवेशीकरण एक राजनीतिक प्रक्रिया है और उसका लक्ष्य साम्राज्य-विस्तार के लिए परोक्ष-अपरोक्ष तरीकों से राजनीतिक आधिपत्य स्थापित करना होता है। परन्तु यूरोपीयकरण अपने आप में अधिक व्यापक एक सांस्कृतिक-साभ्यतिक प्रक्रिया है। आधुनिकता के मुखौटे में इसने आज एक बलीयसी विश्व-सभ्यता का रूप अख्तियार कर लिया है। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि वैसे उपनिवेश जिनकी कोई सांस्कृतिक-साभ्यतिक पहचान नहीं रही हो, वे औपनिवेशीकरण से मुक्त केवल राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त कर हो सकते हैं और इस तरह राजनीतिक रूप से स्वतंत्र होकर भी वे सभी यूरोपीयकरण की साभ्यतिक प्रक्रिया के अंगमूल बने रह सकते हैं। परन्तु भारत का सन्दर्भ भी क्या ऐसा ही है। इस बात की अनदेखी नहीं की जा सकती कि भारत संस्कृति और सभ्यताओं के बहुध्रुवीय विश्व में एक छोटा-मोटा कोई देश नहीं अपितु आधा ग्लोब है। अपनी विशिष्ट संस्कृति और सभ्यता के कारण ही भारत विश्व की मान्य संस्कृतियों और सभ्यताओं के लिए सदैव हमवतन बना रहा है। अत: भारत की स्वतंत्रता का मूल्यबोध अन्य उपनिवेशों को मिली राजनीतिक स्वतंत्रता से न केवल भिन्न बल्कि व्यापक और वृहत्तर भी है। हमारा स्वतंत्रता आन्दोलन यदि दुनिया की सबसे शक्तिशाली साम्राज्यसत्ता की जड़ों को हिला देने में समर्थ हुआ, तो इसलिए कि स्वतंत्रता का उसके लिए सिर्फ एक राजनीतिक मूल्य नहीं, अपनी संस्कृति और सभ्यता के विश्वबोध को अपने जीवन में प्रतिष्ठापित करने का आदर्श था। वह अपनी खोई हुई पहचान को फिर से हासिल करने का अलख स्वप्न था।

मूल्य : 20 रुपये
ISSN 0973-1490
वर्ष-15 अंक-2 अक्टूबर-दिसम्बर 2017

चिन्तन-सृजन

www.asthabharati.org

त्रैमासिक

आस्था भारती, दिल्ली

भारतीय मानस का वि-औपनिवेशीकरण प्रामाणिक संस्कृतात्मा के प्रत्यभिज्ञान की कार्य-योजना

अम्बिकादत्त शर्मा*

भारतीय मानस का वह भाग जो औपनिवेशिक भारतीयता का उत्पाद है, उसके लिए वि-औपनिवेशीकरण एक प्रतिगामी विचार है और भारतीय मानस का वह भाग, जिसमें अपने स्वरूप और साथ-ही-साथ स्वरूप से विस्थापित होने की आत्मचेतना किसी-न-किसी रूप में बनी हुई है, उसके लिए वि-औपनिवेशीकरण एक पुरोगामी प्रक्रिया है। यह पुरोगामी प्रक्रिया उनके लिए मानो नीत्शे की 'शाश्वत वापसी' का आह्वान है, ताकि अपने सांस्कृतिक आत्म में पुनः प्रतिष्ठ हुआ जा सके। वही सांस्कृतिक आत्म, जिसका स्वरूप उपनिवेशवाद के कारण उत्पन्न हुए उन्मूलन और तमाम कर्दम-कलुषों के बीच भी पूरे तौर से कायान्तरित नहीं हुई है। अतः वि-औपनिवेशीकरण के प्रश्न पर दो विपरीत ध्रुवों में दोलायमान भारतीय मानस के साथ संवाद करने के लिए औपनिवेशीकरण के अभिप्राय और अपहितियों को गहरे में उद्‌घाटित करना होगा। इसके लिए सर्वप्रथम औपनिवेशीकरण और यूरोपीयकरण के अर्थ और निष्पत्तियों को अलग-अलग करके समझना जरूरी है। इन दोनों के बीच का अन्तर अन्य देशों के लिए भले महत्त्वपूर्ण न हो, लेकिन भारत के लिए इनका अन्तर विशेष महत्त्व रखता है। औपनिवेशीकरण एक राजनीतिक प्रक्रिया है और उसका लक्ष्य साम्राज्य-विस्तार के लिए परोक्ष-अपरोक्ष तरीकों से राजनीतिक आधिपत्य स्थापित कर अपने लाभ के लिए राजनीतिक-आर्थिकी का एक मजबूत तन्त्र विकसित करना होता है। परन्तु यूरोपीयकरण अपने-आप में अधिक व्यापक एक सांस्कृतिक-साभ्यतिक प्रक्रिया है। आधुनिकता के मुखौटे में इसने आज एक बलीयसी विश्व-सभ्यता का रूप अख्तियार कर लिया है। यह पश्चिम का एक सार्वभौम मिशन है और उसका लक्ष्य पूरी दुनिया को अपने चपेट में लेकर सम्पूर्ण

*दर्शन विभाग डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.) 470003

प्रधान–सम्पादक
यशदेव शल्य
मुकुंद लाठ

सम्पादक
अम्बिकादत्त शर्मा
प्रदीप कुमार खरे

उन्मीलन

मानसिक हिन्द स्वराज का वैतालिक
दार्शनिक षाण्मासिक

वर्ष 31, अंक 2
जुलाई-दिसम्बर, 2017

भारतीय नीतिशास्त्र का औपनिषद् प्रस्थान और रामचंद्र दत्तात्रेय राणाडे की अभ्युक्तियाँ

अम्बिकादत्त शर्मा

'भारतीय चिन्तन का पर्यवसान वेदान्त में होता है'— यह प्रो. रामचन्द्र दत्तात्रेय राणाडे की मूलभूत दृष्टि रही है। उनके द्वारा भारतीय दर्शन पर किया गया इतिहासपरक लेखन, उपनिषद् और गीता को केन्द्र में रखकर भारतीय अध्यात्म–परम्परा को समझने का प्रयास और विभिन्न संत परम्पराओं के माध्यम से वेदान्त चिन्तन–परम्परा का पल्लवन[1] — सबके सब का रूझान यही दिखाना रहा है कि वेदान्त जिसका उत्स उपनिषदों में प्राप्त है, वही अद्वैत–दृष्टि भारतीय–चिन्तन की पार्यन्तिक स्थिति है। वैसे लोग जो भारतीय परम्परा को बहुलवादी बौद्धिक परम्परा के रूप में देखते हैं, उनके लिए प्रो. राणाडे का यह वक्तव्य'' भारतीय चिन्तन का पर्यवसान वेदान्त में होता है''— एक बलीयसी वक्तव्य ही प्रतीत हो सकता है। परन्तु यदि किसी दार्शनिक दृष्टि की पार्यन्तिक प्रस्थिति और भूमिका को परखने का एक मापदण्ड 'सांस्कृतिक स्वीकरण' भी हो सकता है तो प्रो. राणाडे की इस अभ्युक्ति को उचित ठहराया जा सकता है। भारतीय दार्शनिक चिन्तन के बहुआयामी विकास में अद्वैतवादी चिन्तन धारा वैदिक परम्परा में, बौद्ध परम्परा में, व्याकरण परम्परा में, शैव–शक्ति परमम्परा में, साहित्य परम्परा में, और यहाँ तक कि धर्म–शास्त्र और स्मृतियों के चिन्तन में भी मूलगामी रूप से प्राप्त होती है। परन्तु देखने लायक बात यह है कि वेदान्त को जितना सांस्कृतिक स्वीकरण भारतीय परम्परा में प्राप्त हुआ है, उसका किसी अन्य अद्वैती चिन्तनधारा को नहीं मिला है। इसलिये वेदान्त की प्रतिष्ठा भारतीय परम्परा में एक 'धर्म' की तरह है, जिसने एक समग्र–जीवन–दर्शन का रूप धारण किया है। यह बात अलग है कि वेदान्त के विविध सम्प्रदायों के आन्तरिक मतभेद कम नहीं, फिर भी सबकी आत्मा एक है और वह है – एकमेवाद्वितीयम्।[2] अतः उपनिषदों में मौलिक रूप से उपलब्ध वेदान्त की अद्वैतवादी तत्त्वदृष्टि और मूल्य दृष्टि को भारतीय चिन्तन परम्परा का

Books

यशदेव शल्य समग्र

मानवीय सर्जना की तत्त्वमीमांसा

खण्ड एक

ज्ञान और सत्

सम्पादक

अम्बिकादत्त शर्मा

प्रस्तावना

मुकुन्द लाठ

PRINTWORLD
Publishers of Indian Traditions

Name of Editor - Ambika Datta Sharma
Title of the Book - यशदेव शल्य समग्र, खण्ड–1, ज्ञान और सत् (सम्पा.)
Year of Publication - 2017
ISBN No. -978-81-246-0880-7
Name of the publisher -डी.के. प्रिन्टवर्ल्ड, नई दिल्ली

यशदेव शल्य समग्र

मानवीय सर्जना की तत्त्वमीमांसा

खण्ड दो

चित् और मूल्य

सम्पादक

अम्बिकादत्त शर्मा

प्रस्तावना

मुकुन्द लाठ

DK PRINTWORLD
Publishers of Indian Traditions

Name of Editor - Ambika Datta Sharma
Title of the Book - यशदेव शल्य समग्र, खण्ड–2, चित् और मूल्य (सम्पा.)
Year of Publication - 2017
ISBN No. - 978-81-246-0881-4
Name of the publisher -डी.के. प्रिन्टवर्ल्ड, नई दिल्ली

यशदेव शल्य समग्र

मानवीय सर्जना की तत्त्वमीमांसा

खण्ड तीन

समाज और संस्कृति

सम्पादक

अम्बिकादत्त शर्मा

प्रस्तावना

मुकुन्द लाठ

Name of Editor - Ambika Datta Sharma
Title of the Book - यशदेव शल्य समग्र, खण्ड–3, समाज और संस्कृति (सम्पा.)
Year of Publication - 2017
ISBN No. - 978-81-246-0882-1
Name of the publisher -डी.के. प्रिन्टवर्ल्ड, नई दिल्ली

यशदेव शल्य समग्र

मानवीय सर्जना की तत्त्वमीमांसा

खण्ड चार

दार्शनिक इतिहास दृष्टि

सम्पादक

अम्बिकादत्त शर्मा

प्रस्तावना

मुकुन्द लाठ

PRINTWORLD
Publishers of Indian Traditions

Name of Editor - Ambika Datta Sharma
Title of the Book - यशदेव शल्य समग्र, खण्ड–4, दार्शनिक इतिहास –दृष्टि (सम्पा.)
Year of Publication - 2017
ISBN No. - 978-81-246-0883-8
Name of the publisher -डी.के. प्रिन्टवर्ल्ड, नई दिल्ली